नवसाक्षर साहित्यमाला

छोटे गाँव की बड़ी बात

शुभू पटवा

चित्रकार
सुब्बा घोष

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

यह पुस्तक राज्य संदर्भ केंद्र, राजस्थान एवं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कार्यशिविर में तैयार की गई थी।

ISBN 81-237-0850-5

पहला संस्करण : 1990
छठीं आवृत्ति : 1998 *(शक 1919)*

Chhote Gaon Ki Badi Baat (*Hindi*)
रु. 11.00

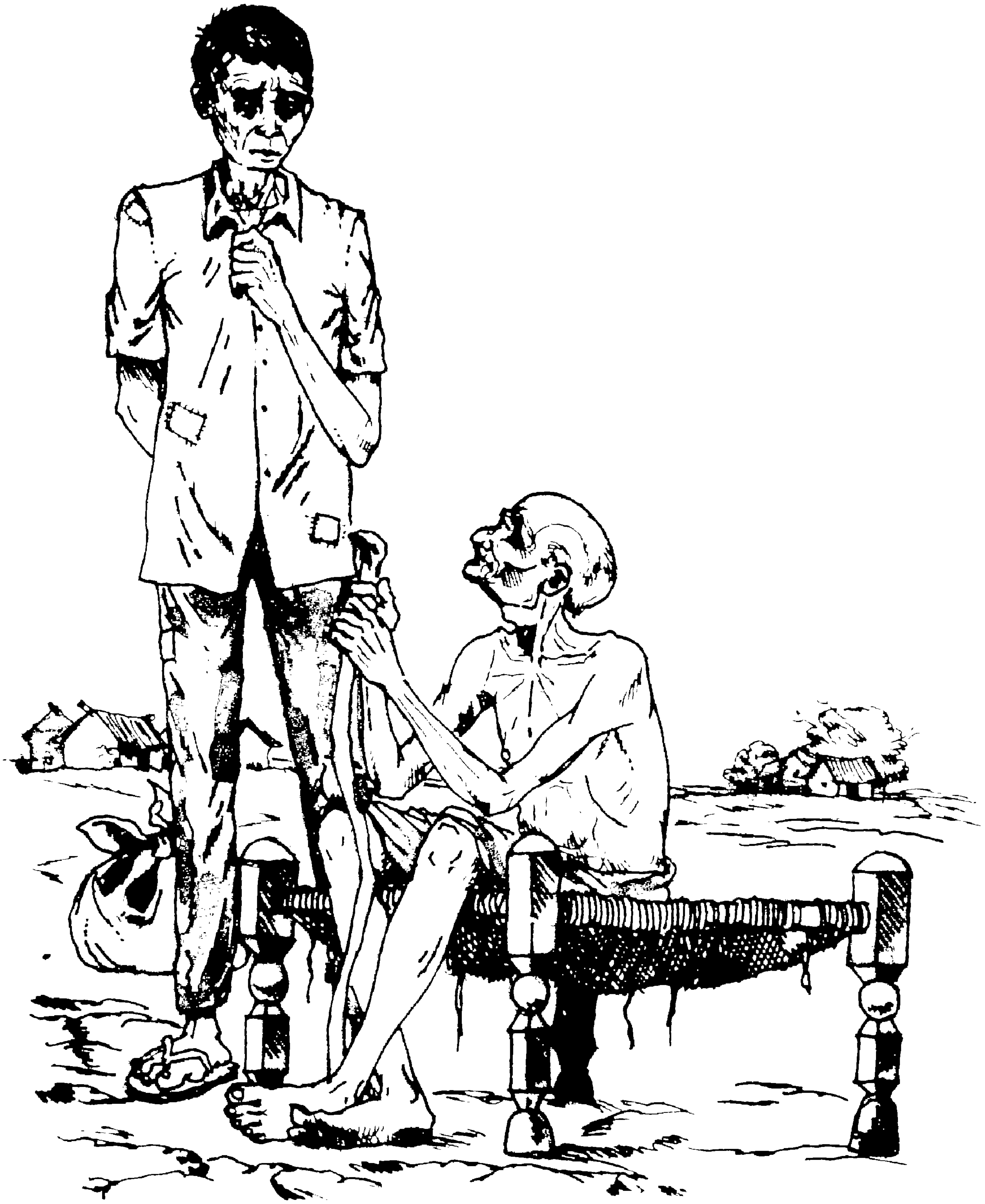
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,
ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

"अरे हरखू। कब आया रे शहर से?'

"बस अभी आया ही हूँ काका। पांवधोक।"

"जीते रहो बेटा। फलो-फूलो।

शहर के हाल ठीक हैं हरखू?"

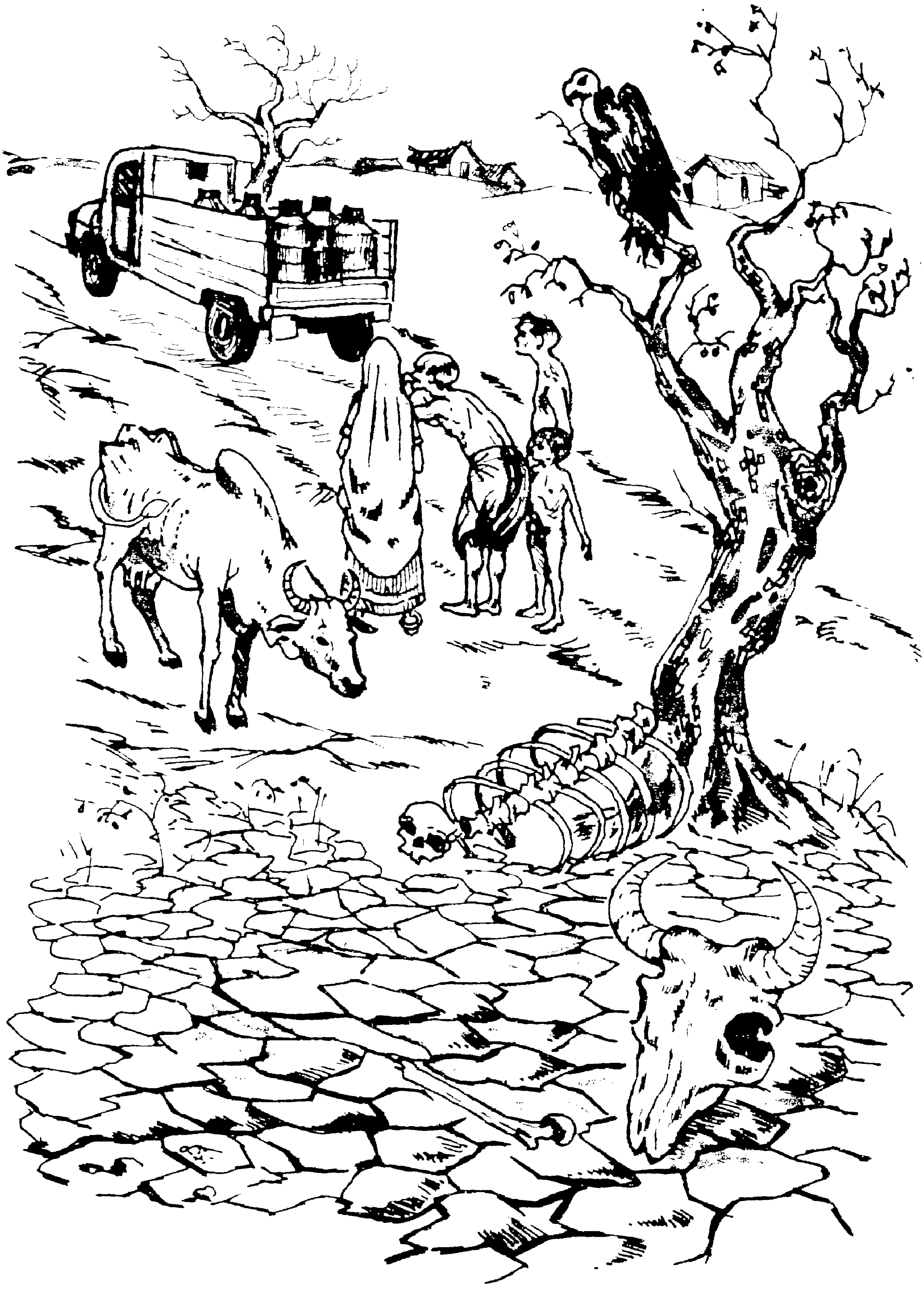


''ठीक ही समझो काका। शहर की भाग-दौड़ और गांव का अमन-चैन। बड़ा फरक है काका। पेट तो अब भरना ही है काका। जहां हालात ले जाये, वहीं जाना पड़े। गांव में, घर में, सब ठीक तो है काका?''

''बस ठीक ही समझो बेटा। दिन काट रहे हैं लोग। इस बार फिर अकाल है हरखू। आस-पास के गाँव सूखे पड़े हैं। कोई जुगत नहीं बैठ रही बेटा। लोग कहां जायें? कल रामू दादा आये थे। पूछा — हरखू की कोई खबर है? और आज तुम आ गये।''

''रामू दादा कैसे हैं काका? जोर में हैं?''

''ना रे हरखू। जोर में अब कौन रहा है गाँव में। चार साल से अकाल है। पशु बेमौत मर रहे हैं। कोई काम-धाम नहीं गाँव में। लोग खाली बैठे हैं। तुम तो जानो हरखू, पढ़े-लिखे हो तुम। बी.ए. पास कराया मैंने तुमको। पर गांव में सब तो ऐसे नहीं है बेटा। एक ही सहारा था बेटा, दूध का। शहर से गाड़ी आती, दूध ले जाती। लोगों के पेट का यही आधार। वह भी कहां बचा। घर-घर में गायें मरी हैं। बची हैं जो, उनका भी पेट नहीं भरता। दूध सूख गया उनका। जंगल में घास का तिनका नहीं। एक समय था। बाड़े में घास की लाटें लगती थी। तलाई का पानी सूखता नहीं था। बारिश कितनी भी हो। पानी का तोड़ा पड़ता नहीं था। एक मेह तो इस बार भी आया रे हरखू। पर तलाई में पानी नहीं आया। पानी कैसे आता। आगोर ही नहीं



शहर से गाड़ी आती। दूध ले जाती।

बचा। तुम तो जानो हो हरखू। आगोर के क्या हाल किये हैं। मुड़िया कंकर खोद-खोद लॉरी में भरी जाती है। और लॉरी शहर जाती है बिकने। सारा आगोर खतम हो रहा है। एक ठेकेदार आता है शहर से। वही खुदवाता है कंकर। मजदूरी तो मिली है लोगों को थोड़ी। पर क्या हो हरखू उससे। अब तुम बताओ। आगोर नहीं रहा। तो पानी कैसे आयगा। पहले थोड़ी सी बारिश होती तो पानी बहकर तलाई में आ जाता। अब सब बिगड़ गया। जंगल सूना पड़ा है। अकाल की मार से बचने के लिए पेड़ काट लिये। खेतों में खेजड़ी काट ली। लकड़ी बेच पेट भराई की। अब उसका भी टोटा है।''

काका अब सुस्ताने लगे। हरखू के चेहरे पर आंखें गड़ा दीं। पहली बार लगा हरखू कैसा हो गया है? थका सा। मरियल-सा। आँखें धंस गयीं चेहरे में। चमड़ी सिकुड़ गयी। अभी से यह हाल! कहाँ तो गबरू जवान था हरखू जब शहर गया था। दो ही तो साल हुए। अब तो सींकिया पहलवान है, बस। ऐसा कैसे हो गया?

काका की छाती फटने लगी। बेटे के हाल पर तड़प उठे। खड़े हुए हरखू के पास तक गये। खाट से उठे तो वह चरमराई। काका के सूखे-बूढ़े हाड़ भी चटखे। दोनों की आवाज एक सी लगी। बूढ़ी खाट, बूढ़े काका।

''कैसा हो गया रे हरखू। ऐसा मरा हुआ-सा।'' सिर पर हाथ फेरते काका बोले।

हाथ हरखू के सिर को सहलाने लगा। पिता जो हैं। कमाऊ बेटा है हरखू। बुढ़ापे का सहारा।

दोनों एकदम पास थे अब। काका के चेहरे की सलवटें बढ़ गयी थीं। काका खांसने लगे। वे बैठ गये।

''अब बुढ़ापे ने घेर लिया बेटा।''

''सो तो है काका। जुगत से रहो बस।'' हरखू ने कहा।

''मेरा तो ठीक है रे। अब क्या बढ़ना है मेरा। पर तुम कैसे हो गये बेटा। गये तब तो नहीं थे। कहते हैं शहर में तो सब साधन है। आराम है। तो भी ऐसा हुलिया बन गया बेटा।''



''कैसा हो गया रे हरखू! ऐसा मरा हुआ सा।''
सिर पर हाथ फेरते काका बोले।

काका की बोली भारी पड़ गयी। गला भर गया। हरखू नीचे बैठ गया। काका के पास। होले से गोड़े पर हाथ रखा।

हरखू बोला —

''अरे काका। ऐसे मन भारी करते हैं कोई। यह तो समय की मार है। थोड़ी मुझ पर भी पड़ी। मैं तो भला-चंगा हूँ काका। आपसे तगड़ा। पर, अपने हाल तो देखो। बीमारसे लगते हो। कोई ताव-तप हुआ काका?''

''हाँ रे हरखू। बुखार हो गया। डाक्टर की विलायती दवा ली। सात दिन चली। बोला दूध पीना खूब। नहीं तो दवा उलटा असर करेगी। अब दूध कहाँ से आये बेटा। विलायती दवा यूं भी महंगी। पहले भी ताव-तप होता था। ऐसी दवा कब थी तब। दादी काढ़ा बना पिला देती रात को सोते हुए। सवेरे उठे। हाथ-मुँह धोया। खाली पेट तुलसी के पत्तों का रस पिला देती। तीन दिन में बुखार साफ। अब तो बेटा यह घिसना-घिसाना ही आफत है।''

काका की दशा पर तरस उठा हरखू। उनकी बातें सुनता रहा। कुछ नहीं था कहने को उसके पास।

हरखू डर रहा था। काका फिर शहर की बात पर न आ जायें। अपने मरियल हाल नहीं बताना चाहता वह। काका दुखी होंगे उससे।

है ही क्या बताने को शहर का। धुएं से भरी सड़कें। भीड़ भरी रेलम-पेल। इधर से उधर भाग-दौड़। सीटियों का शोर। बदबू भरे गली-मकान। सीलन सनी दीवारें। पीने का मटमैला पानी। ऐसी ही तो जगह रहता है हरखू। नहीं, नहीं बतायगा यह सब। काका का मन कितना दुखेगा तब। गहरे तक दुखी जो होंगे काका। न-न, कुछ नहीं बतायेगा। जो चाहे हो जाय।



''है ही क्या बताने को शहर का। धुयें से भरी सड़कें।''

हरखू मन ही मन सोचता रहा। होले से गोड़े पर रखा हाथ हटाया। पालथी लगा बैठा।

काका का मन हरा होने लगा। खुश-खुश नजरों से हरखू को निहारने लगा। बाप का लाड़ हिलोरें ले उठा।

"रामू दादा क्यों पूछ रहे थे काका।" बात बदलने के इरादे से कहा हरखू ने।



काका अब धीरज धरे थे। ''कहूंगा बेटा, कहूंगा। अब उठो। नहाओ-धोओ। कब से आये बैठे हो। इतना दूर से आये, थके हो।''

पांचवा दिन है आज हरखू को गांव आये। चौपाल की चहक नहीं देखी इन पांच दिनों में। मरघट जैसा बना है गांव। पुरखों से सुनी है अकाल की कथाएं। पर क्या अकाल बरस-दर-बरस इसी तरह पड़ते रहेंगे? कोई हल नहीं इसका।



चौपाल की चहक नहीं देखी इन पाँच दिनों में। मरघट बना है गाँव जैसे।

हरखू को लगा, यह एक चुनौती है। हल तो होगा कोई। कोई चूक है हमारी ही। हमारी समझ की। यह धरती तो सब की है। सब का पेट भर सकती है। फिर लोग भूखे क्यों हैं? क्यों मरता है पशुधन असमय? सवाल पर सवाल उठते हैं हरखू के मन में। उत्तर भी चाहता है उसका मन।

यह भारत तो गांवों का देश है न। गांवों में बसते हैं यहां के लोग। अचूक समझ के हैं ये लोग। चूक फिर कहां है? कोई तो होगा जो तलाश ले यह चूक। बता दे सुगम रास्ता।

अनमना हरखू यही सब सोचता है। गांव छोड़े उसे दो ही तो साल हुए हैं। शहर का अभी भी नहीं बन सका है वह।

उसे रह-रह कर याद आते हैं बचपन के दिन। जब गोचर में गायें चरती थीं। चरागाह रखे जाते थे हर गांव में। हिफ़ाजत की जाती थी गोचरों की। सबका सामूहिक काम होता था यह। इतना संकट भरा नहीं होता था तब जीवन।

याद है हरखू को गंगू तेली की तेल घानी। गठीले बदन वाला उसका बैल। दिन भर घानी के चारों और घूमता वह बैल। गले में बंधी घंटी बजती रहती। गंगू को गांव में सभी मामा कहते। हरखू को नहीं पता कि गंगू कैसे मामा हुआ सबका। हरखू भी मामा ही कहता उसे। सबका मामा — गांव भर का गंगू मामा। आपसी मेल-मिलाप, मन से मन का ऐसा गहरा जुड़ाव। सचमुच गांव तो गांव ही था हरखू का।

पर अब घानी नहीं चलती। गंगू मामा का बूढ़ा बैल ही बोझ हो गया उसका।

घूमते-घूमते उस दिन गंगू मिल गया। साठ पार कर गया गंगू। दिन किस तरह सरक जाते हैं। ऐसे गुजर जाते हैं कि पता ही नहीं लगता।

गंगू लकड़ी के सहारे चलने लगा है। दोनों का आमना-सामना हो गया।

''पांवधोक — गंगू मामा।'' हरखू थोड़ा नीचे हुआ। चरणों तक हाथ बढ़े।

आंखों पर ऐनक लगा था। गंगू साफ नहीं देख पा रहा था। उसका हाथ आंखों के ऊपर गया। गरदन ऊंची कर पहचानने की कोशिश की।



आँखों पर लगे ऐनक से साफ नहीं देख पा रहा था गंगू। उसका हाथ आँखों के ऊपर गया। गर्दन ऊँची कर पहचानने की कोशिश की।

"हरखू हूँ मामा। पहचाना नहीं?"

"पहचाना रे हरखू। बहुत दिनों से देखा न। शहर जाकर बदल गया तू तो। अब आंख भी तो पहले वाली नहीं रही हरखू।"

"कहां हो आये मामा।" हरखू बोला।

गंगू ने हरखू का हाथ पकड़ लिया। फिर उसके चेहरे को देखने लगा।

"अब कहां जाना है बेटा। दिन काट रहा हूं। गांव में कोई काम नहीं बचा। बैल को घास भी नहीं दे पाता दो समय। शहर का तेल आने लगा घरों में। ताजा-खालिस तेल अब नहीं चलता।"

"सो तो है मामा।" हरखू बोला और सोचने लगा।

ताजा तेल, ताजा हवा, ताजा दूध, ताजा पानी — सब अब कहानी हो गये। शहर में तो ये नसीब नहीं, पर गांव में भी नहीं।

ऐसा कैसे हो गया? हरखू के मन में विचार उठने लगे।

सबका पेट कैसे भरा जाय? खाने वाले ही बढ़ गये। इसीलिए क्या सब कम पड़ने लगा ? पर ऐसा तो नहीं होना चाहिए।

हरखू को लगा वह पढ़ा-लिखा है। क्या इसके कारण नहीं सोचने चाहिए ? सभी क्यों नहीं सोचते ? कोई हल नहीं निकल सकता?

अखबार में पढ़ी खबर याद आयी। पिछले ही दिनों तो पढ़ी थी। वह तो ऊंची पढ़ाई किये आदमी की कही बात थी। पूरी जांच-पड़ताल के बाद कही गयी बात। उसे सच कैसे नहीं मानेगा कोई?

खबर छपी थी। यह धरती दोगुनी आबादी का पेट भर सकती है। सारी बात ठीक से समझी जाय। पर कौन बताये ठीक-ठीक बातें। क्या है वह खोज-पड़ताल। गांव के लोगों तक भी पहुंचे तो सही।

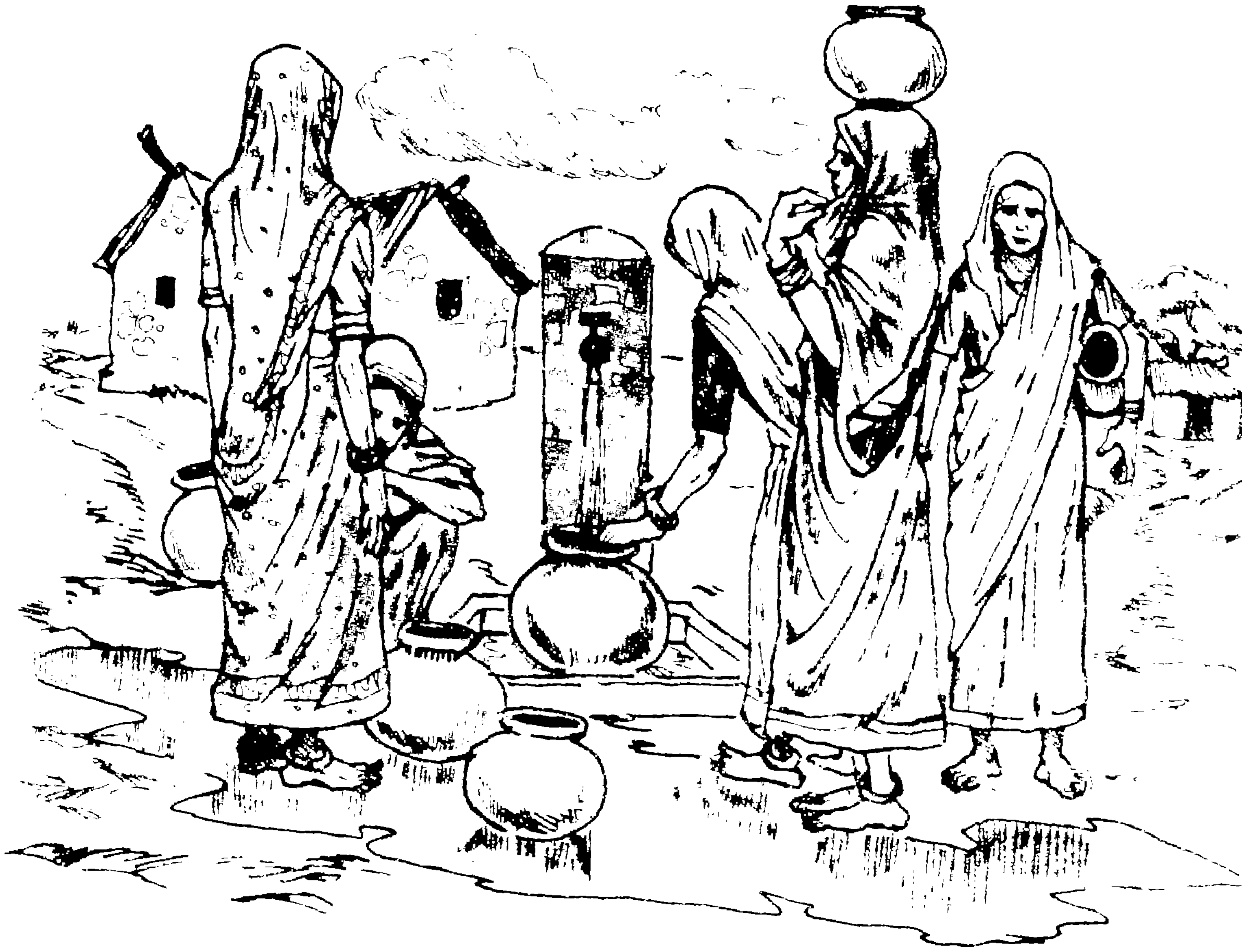
हरखू को लगा यह तो उसका काम है। पढ़े-लिखे लोगों का काम। पर वह तो शहर में नौकरी करने जा बैठा।

हरखू के मन में उथल-पुथल होने लगी। क्या करे वह? गांव की दशा ने उसके मन को हिला दिया।

वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। मन की उधेड़-बुन समेट नहीं पा रहा था। रह-रह कर कई-कई बातें याद आ रही थीं।

उसे याद आयी बारिश के पानी की बात। किताबों में पढ़ी थी यह बात। जितना पानी बरसता है उससे तो जल ही जल हो जाये धरती पर।

थार-रेतीले धोरों के गांवों में भी बारिश होती है। भले कम होती है बारिश। पर, जो बरसता है वह पानी ठहरता नहीं। गांवों में बरसाती पानी को बांधने के तरीके रहे हैं। पर अब लोग भूल रहे हैं। नल के पानी ने अपनी परखी-समझी बात भुला दी और नल में कभी पानी, कभी हवा की सीटी बजने लगती है।



लोग भूल रहे हैं। नल के पानी ने अपनी परखी-समझी बात भुला दी।

खुद के भरोसे पर थे तो पानी पूरता था। लोटे भर पानी में हाथ-मुंह धो लेते थे। बचा भी लेते थे थोड़ा पानी। घड़े पानी में तो घर भर के लोग नहा लेते थे। नहाने का पानी भी गंवाते नहीं थे। उसे भी सहेज लेते थे। वही पानी लीपने-थापने में काम आ जाता। पेड़ सींच देते। घर में पोंछा लगा लेते। कितने-कितने काम आता था एक ही पानी। अब तो नल भी खुला छोड़ देते हैं लोग। बेकार बहते पानी की भी परवाह नहीं करते।

पानी तो जीवन है। बिन पानी सब सून। पानी के साथ यह बात कैसे बदल गई ? कौन दोषी है इसके लिए ?

हरखू के मन में सवाल खड़ा होता है। पर जवाब नहीं उसके पास कोई। खोजने होंगे इनके जवाब। निकालने होंगे सवालों के हल। यह जल, यह भूमि, यह वन-जंगल पुरखों की दी हुई अमानत हैं। इसमें खयानत कैसे कर सकता है कोई? ये नाते-रिश्ते क्यों बदल गये?

हरखू कुछ समझ नहीं पा रहा था। मिट्टी, पानी, जंगल, पेड़, घास, पशुधन, पंछी-पंखेरू, सब में एक तालमेल था। ऐसा हेल-मेल कि सबकी जरूरत सब पूरी करते। एक की कमी सब मिल कर पूरी करते। कैसे टूटा यह तालमेल?

हरखू को फिर छापे की खबर याद आयी। धोरों की रेतीली धरती। जहां बारिश कम होती है। खेती भी कम होती है। पर पशुधन सबसे अधिक। गोधन सबसे अधिक। भेड़-बकरी सबसे अधिक। यह कैसे?

यह तालमेल अनूठा है। खेती नहीं, बारिश नहीं पर पशुधन खूब। तो क्या खा कर जीते हैं? यह कोई मायावी खेल नहीं। एक तालमेल है। यह बिगड़ता है तो संकट खड़ा होता है।

पशुधन है तो ऐसी घास भी है। ऐसी घास, जिसे कम पानी चाहिए। थोड़ी भी बारिश से सूखे तिनके हरे हो जाते हैं। हरियल कोंपल फूट पड़ें। सूरज का तेज ताप भी सह लेती है यह घास। पशुओं, गायों के आधार वाली हैं ये घासें। सेवण घास। धामण घास। सारा पशुधन इन पर जीवित रहता है।





उसे याद आती है जीवट भरी घटना।

पेड़ों की कटाई रोकते सैकड़ों लोग कट गए।



पर अब लुट गई सब घासें। जिस जमीन पर घास ही हो वहां खेती कैसे होगी? लालच के मारे यह होने लगा जहां-तहां। जहां सिंचाई वहां यही सब। अब यह भी कैसी बात? इस भूमि पर अधिक पानी देना ही ठीक नहीं। नहीं झेलती धोरों की धरती घणा पानी। फिर खेती क्यों? घास की बुआई क्यों नहीं? लालच में धरती को बिगाड़ने से क्या लाभ? छोटे, कम समय के लाभ के मारे पीढ़ियों का संकट मोल ले लें — यह क्यों? हल ही ठीक है तो मशीन की जुताई क्यों?

कितने सारे सवाल खड़े हो गये। हरखू को लगा उसका माथा फट जायगा। वह अकेला है। सवाल हैं इतने सारे। कैसे हल होंगे ये सवाल.......

हरखू को लगा यह तो हार जाने की बात हुई। मान ले अपनी हार!

उसे याद आती है जीवट भरी घटना। पेड़ों की कटाई रोकने में सैकड़ों लोग कट गये। सैकड़ों साल पुरानी घटना हरखू की आंखों के आगे नाचने लगी। खेजड़ी के पेड़ बचाने एक-एक कर तीन सौ तिरेसठ लोग कट मरे।

अब कहां गया हमारा वह बल? हमारे मन की ऐसी मजबूती!

पेड़ केवल देता है। पर लेता तो कुछ नहीं। पेड़ से लेते रहें। उसे लूटते रहें। काटते भी रहें। तब क्या मिलेगा उससे। केवल लकड़ी ही तो मिलेगी। और कुछ नहीं।

पर क्यों करते हैं पेड़ों के साथ ऐसा सलूक। वे जो

इनसे ही पेट भरते हैं। अपनी रोजी कमाते हैं। कब नहीं हुआ ऐसा? सदा होता रहा है। लेकिन अब में और तब में भेद क्या है? आज यह समझना पड़ेगा। हमें जीना है तो यह जानना होगा।

कौन बतायगा यह? खुद ही तो जानते हैं। यों ही नहीं चल जाती थी पेड़ पर आरी। देखते थे पहले कि पेड़ अब कितना जीयेगा। ताजे-जवान पेड़ से भी पा लेते थे कुछ न कुछ। पर वह कायम रहता था। आदमी के हाथ का शिकार नहीं होता था।

यह नाता था जंगल के साथ। किसने बदला इसे? फिर सवाल आ खड़ा हुआ।

हरखू तंग आ गया इन सवालों से।

घर पहुंचा तो सूरज डूबने को था। डूबते सूरज की लाली दो साल बाद देखी हरखू ने। शहर में सूरज का उगना अस्त होना कब देख पाता है कोई?

शहरों के ऊँचे मकान आकाश छू रहे हैं। सिर चढ़ने तक ही नजर आता है सूरज वहां। कौन देख पाता है सूरज की लाली।

शहर की भागम-भाग में किसे समय है? ऐसा कोई होगा भी शहर में जो सोचे सूरज के सात रंगों पर उजाले से पहले, बजते सायरन की सीटी से जो चलते हैं लोग। रोटी और रोजगार की दौड़ में क्या बच पाती है चेहरों की लाली।

इस बस से उस बस में भीड़ की धकापेल। चिमनियों से उठते धूएं से काले होते फेफड़े। सब को कुछ दे कर सब का सब कुछ ले लिया जाता है जहां। वहां लाली की बात ही कैसी?

आंगन में मां के पास बैठा है हरखू। खुले आकाश के नीचे रोटी का सुख। मां की ममता में घुली दाल-तरकारी। पंखा झलते मां के बूढ़े हाथ।

धीरे से मां कहती है ''हरखू बेटा।''

''हां मां।''

''अब शरीर साथ नहीं दे रहा। बहू आ जाय घर में अब। मुझे भी सुख चाहिए बेटा। शहर ले जाओ तो तेरी रोटी का सुख। तुम तो पढ़े-लिखे हो बेटा, तो पूछ रही हूं।''



आँगन में माँ के पास बैठा है हरखू। खुले आकाश के नीचे रोटी का सुख।

हरखू चुप । कल तक है वह गांव में । फिर वही शहर । अगले दिन जाना ही है उसे ।

हाथ धो हरखू खड़ा हुआ । मां ने फिर पुकारा ।

"बोले नहीं बेटा — बहू लानी है ।"

हरखू ने अब भी मुंह नहीं खोला । चांदनी रात में मां का थका चेहरा वह साफ देख सकता था । तब भी वह चुप था ।

उसके पांव चलने को उठे । मां ने इस बार नहीं टोका । आंगन से बाहर निकला वह ।

बाहर रामू दादा बैठे थे । काका और रामू दादा बतिया रहे थे । आमने-सामने रखी खाट पर बैठे थे दोनों ।

हरखू ने निकलना चाहा । काका ने पुकारा — हरखू ठहर गया । पास जा खड़ा हुआ ।

"बैठ रे हरखू ।" रामू दादा ने कहा ।

"हां दादा । कहो ।" हरखू बैठते हुए बोला ।

थोड़ी देर के लिए तीनों अबोले हो गये जैसे सोच रहे हों कि क्या कहें? रामू दादा बोले तो ही मौन टूटा । "कल जा रहे हो शहर हरखू ।"

"हां दादा । कल ही समझो । कल दिन तक हूं । परसों तो सबेरे ही जाना है ।" अनमना हरखू बोला ।

"तो कालू को साथ ले जाओ हरखू । खाली बैठा है । रोटियां तोड़ रहा है । खेत में तो कुछ है नहीं बेटा । ले जाओगे तो

सहारा लगेगा घर में। काम का बन जायगा छोरा।''

हरखू चुप। क्या कहे? कहां ले जाये? रामू दादा को, काका को लगता है शायद शहर में सब सुखी हैं। काम हैं। धंधे हैं। मानो जाते ही काम मिल जायगा।

''क्या करोगे उसे शहर भेज कर दादा!'' हरखू कहता है।

''यहीं कुछ सोचो। कोई काम खोजो। शहर में अभी ठीक नहीं।'' बात टालता-सा हरखू उठ जाता है।

रामू दादा का कालू नौकरी चाहता है। मां बहू चाहती है। काका बीमार हालत में है। हरखू को अपने पास चाहते हैं।

हरखू भी कुछ चाहता है। गांव की बदहाली से तरस उठा है वह। शहर में भी नहीं खपा सका है अपने को।

पर, यह सब किसे बताये हरखू?

सब ओर एक-सी मुसीबत। एक से हाल। कहीं कोई रास्ता नहीं।

गांव में हरखू के सात दिन यही रास्ता तलाशते ही गुजर गये।

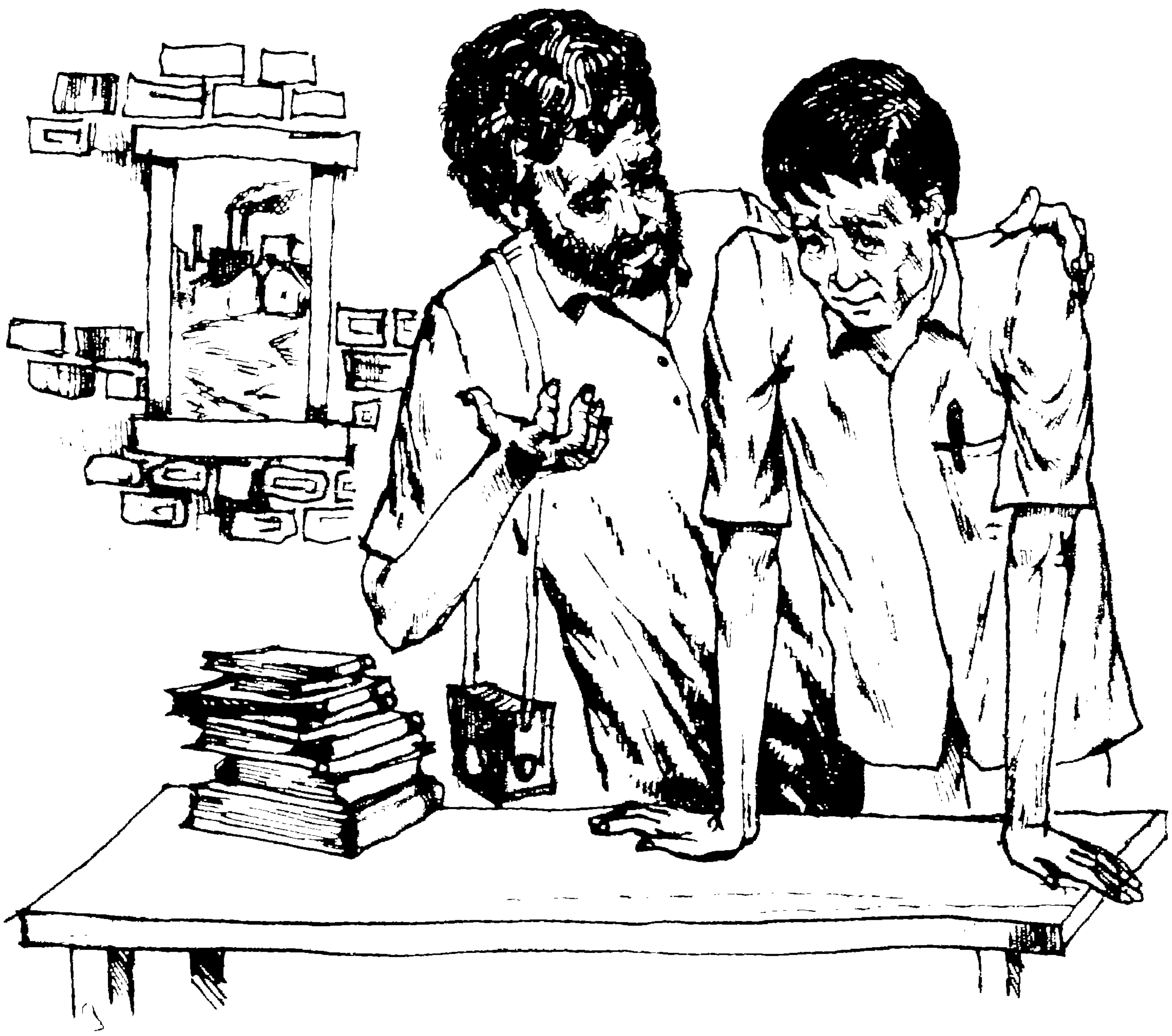
फिर शहर की भाग-दौड़ में आ गया हरखू।

शहर की अनजानी भीड़। इसी में एक उसका साथी है रमेश।

दो बार हो आया रमेश की ओर।

दोनों बार कमरे पर ताला लटका मिला। हरखू परेशान हो उठा। मन में उठ रही बातें किसे कहे? रहा नहीं गया। तीसरी बार फिर गया रमेश की ओर।

कमरे का दरवाजा खुला था। उसकी पीठ दरवाजे की ओर थी। कुछ खोज रहा था। हरखू दरवाजे के बीच चुप खड़ा रहा। देखा। कैमरा खोज रहा था। फोटो खींचने का कैमरा। मुंह दरवाजे की ओर किया कि हरखू दीखा।



टेबिल पर रखी किताबें एक ओर कर दी। टेबिल पर थोड़ा झुक गया। दोनों के बीच की दूरी कम हो गई।

रमेश के चेहरे पर खुशी की लकीरें दौड़ गयीं।

"आ गये गांव से?" रमेश बोला।

"हां — आ गया।" हरखू की आवाज में हताशा झलक रही थी।

"क्या बात है?" कंधों पर हाथ रखते रमेश ने कहा। "बड़े अनमने-से हो लाला। गांव से आये हो। ताजगी होनी चाहिए चेहरे पर।"

हरखू अब भी सहज नहीं हो पाया था। कुछ नहीं बोला। कुरसी पर चुप बैठ गया।

रमेश हैरान हुआ। वह भी सामने बैठ गया। टेबिल पर रखी किताबें एक ओर कर दी। टेबिल पर थोड़ा झुक गया। दोनों के बीच की दूरी कम हो गयी।

"घर में सब ठीक है हरखू। इतने अलसाये से कैसे हो?"

वह हरखू की आंखों में झांकने लगा।

"हां सब ठीक है।" अब हरखू बोला। उसकी आवाज भारी थी। गला जैसे बैठ गया हो।

"क्या आते ही तबियत बिगड़ गई?" रमेश फिर बोला।

"नहीं रमेश। एकदम ठीक हूं।" हरखू ने कहा।

अब वह काफी सहज हो गया था।

''कहां चले गये थे रमेश? तीसरी बार आया हूं। तब मिले हो। गांव से आया तभी से मन अनमना हो रहा है।''

''याद आ रही है गांव की?'' रमेश ने कहा।

''हां — सो तो है। पर अनमना इस कारण नहीं। जो दशा देख आया हूं गांव की वह है कारण। क्या होगा रमेश। कुछ नहीं है अब गांव में। तुम ताजगी की बात करते हो। है कहां वहां ताजगी? बस एक सांय-सांय। हरदम उठती एक सिसकारी। पर कोई सुनने वाला नहीं।

''क्यों? तुम जो हो।'' रमेश बोला ।

''मैं कहां हूं? मैं तो यहां हूं शहर में।'' हरखू की बेबसी साफ झलक रही थी।

''शहर में क्या है फिर हरखू? यहां की सिसकारियां क्या नहीं सहते तुम? बचा ही क्या है रहने को शहर में? जो जीवन हम जी रहे हैं, है यह जीवन?''

आमने-सामने बराबर सवाल।

सवालों के जवाब खोजते रमेश — हरखू।

एक ऐसा घटाटोप जहां सब खो जायें। फिर इन दो की क्या बिसात।

किसी ने कहा है प्रकृति जब भी कोप करती है किसी का लिहाज नहीं करती वह। पूरा मजा चखा देती है।

तब क्या यही हो रहा है आज?

जो भी हो रहा है किसी को तो सोचना होगा। शहर हो या गांव, यह तो सबका संकट है। हल भी सबके साथ रहने से ही निकलेगा।

रमेश-हरखू के बीच एक सूनापन तैरने लगा। दोनों एक-दूसरे को देखने लगे। जैसे नये सिरे से जानना चाहते हों दोनों एक-दूसरे को। कैसी होती है यह दशा। जानते हुए भी कुछ नया जानने की दशा।

पल भर के मौन में कितनी बातें घूम जाती हैं। फिर अधिक देर ऐसा मौन सहा भी नहीं जाता।

हरखू अभी भी भावुक है। उसका मन अब भी भारी है। पर रमेश भावुक नहीं है। वह हक़ीकत समझता है। उसे समझ कर काम करता है।

रमेश ने ही मौन तोड़ा। "लो उठो" — बोला। कैमरा उठाया। कुरसी सरका, दरवाजे तक आ गया।

हरखू अभी भी कुरसी के पास खड़ा है। "कहां चले?" — बोला।

"आज रात में एक सभा है। पास ही एक गांव है। वहां चलें। गांव के लोग मिलकर एकजुट हुए हैं। पेड़-पौधों के लिए, मिट्टी-पानी के लिए।" रमेश ने बताया।

"पर कल मुझे काम पर हाजिर होना है।" हरखू ने बताया।



हरखू सहम गया। रमेश के साथ हो लिया।

"नहीं पहुंचा तो परेशानी खड़ी हो सकती है।"

रमेश हंसा।

"हरखू तुम नहीं समझ सकते। नौकरी मेरी भी है। साथ में पढ़ भी रहा हूं। यह भी समझ रहा हूं कि सभा में जाना भी जरूरी है। रात भी गांव में ही बितानी है।"

रमेश की आवाज में एक तीखापन आ गया था।

हरखू सहम गया। रमेश के साथ हो लिया।

थालियां बज उठीं। चारों दिशाएं झंकार से गूंज गयीं। थाली की झंकार — जागरण की सूचक। गांव के लोग घरों से निकल पड़े। चौपाल पर पहुंचने लगे। एक, दो, पांच — होते होते सैकड़ों लोग हो गये।

सूरज डूबने को हो रहा था। उजाला धुंधला होने लगा था। घरों की दीवारों पर दीपक टिमटिमाने लगे। हर घर पर दो दीपक। अंधेरे से उजाले की ओर। रोशनी के सूचक।

देखते-देखते मशाल लिए एक आदमी आ पहुंचा। जलती मशाल।

ले मशालें चल पड़े हैं लोग मेरे गांव के।

अब अंधेरा जीत लेंगे लोग मेरे गांव के।।

गांव की फेरी दी जाने लगी। नारों से गगन गूंजने लगा।

सूखी धरती करे पुकार
पेड़ लगाओ करो सिंगार

फेरी पूरी हुई। लोग मैदान में बैठने लगे। औरतें, लड़के-लड़कियां, बूढ़े-जवान — सब पहुंच गये। सभा जुड़ गयी।

आज गांव का सालाना जलसा है। जलसा भी कैसा? सूखी धरती को फिर से हरा-भरा करने का। कैसी अनूठी बात है। कैसा है यह गांव।

शहर से जुड़ा छोटा-सा गांव। गांव-शहर का गहरा नाता। शहर-गांव के लोगों की मिली-जुली सभा।

सभा शुरू हुई। गांव जनों के भाषण। तालियों की गड़गड़ाहट हुई। मीठे-मोहक नारे गूंजे। न शिकवा न शिकायत। न किसी पर दोष की बात। न किसी पर आरोप। घंटे भर चली सभा। सब के मुंह से एक सी बात। "पेड़ लगाओ। पेड़ बचाओ। पौध लगाओ। घास उगाओ।" एक-एक बोल रहा था। सब सुन रहे थे।

यह धरती धरोहर है। पुरखों से मिली है यह धरोहर। क्या नहीं है इसकी गोद में? पर किसी एक के लिए नहीं। सब के लिए है। आदमी, जानवर, पंछी, पंखेरू, कीड़े-मकोड़े, पेड़ पानी, सूरज, वायु — सबका सब पर एक सा हक। सब सब के लिए।

एक युवक बोला —



ले मशाले चल पड़े हैं लोग मेरे गाँव के ।
अब अँधेरा बीन लेंगे लोग मेरे गाँव के ।



"साथियों — गांव एकजुट होकर खड़ा हो जाय तो क्या नहीं हो सकता? इस गांव ने यह बता दिया है। एक बनकर, नेक बनकर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। अपना भला खुद सोच सकते हैं। गांव की जरूरत गांव से कैसे पूरी होगी — हमें सोचना है। हमें अपने पांव मजबूत करने हैं। अभी बहुत बढ़ना है। अपने लोभ-लालच में अगली पीढ़ी के लिए संकट नहीं बढ़ाना है। हमें अपनी पीढ़ियों की ओर देखना है। इस गांव से दूसरे गांवों में उजाला फैले। यही सोच कर हमें आगे बढ़ना है।"

सभा खत्म हुई। लोग जाने लगे। फिर गगन-भेदी नारे। सभी के चेहरे खुश।

भोर हुई। लोग घरों से निकले। एक रेला सा बहने लगा। एक ही दिशा में। गांव की सांझी जमीन। गोचर की जमीन। गांव का अपना जंगल। अपना चरनोट।

यह क्या हो रहा है? सभी पेड़ों पर सूत का धागा बांध रहे हैं। पेड़ के साथ आदमी का नाता। अटूट धागों में बंधा नाता।

यह राखी का दिन है। बहन ही नहीं बांधती भाई की कलाई पर राखी। पेड़ों की रखवाली के लिए हर कोई बांधता है उसके तने पर कच्चा धागा। पर कितना पक्का!

बूढ़े, जवान, लड़के-लड़कियां, सब काम में लगे हैं। सबके हाथों में पोलीथीन की छोटी-छोटी थैलियां है। मिट्टी भर रहे हैं। भरी थैलियां एक ओर रख रहे हैं। चौरस गड्ढा है। एक फुट गहरा है। इसी में रख रहे हैं भरी थैलियां।

और अब इधर। मिट्टी भीगी इन थैलियों में बीज डाला जा रहा है। सधा हाथ कब छिपा रह सकता है। किस पौधे के

हैं ये बीज? कौन तय करता होगा कि कैसे हों ये बीज?

यही है वह पौधशाला। जन पौधशाला जहां सब मिलकर अपनी मेहनत से पौधे तैयार करते हैं। चार साल हुए इस आंदोलन को। तीन लाख पौधे तैयार कर दिये।

पौधे भी कैसे? पेड़ बनकर पंछी को बसेरा दें, पंथी को छाया, पशुओं को चारा और मनुष्यों को भोजन। साफ हवा दें सांस लेने को और घर की रसोई को दें जलावन। कितना देता है एक पेड़! लेता तो कुछ नहीं।

बालकों की उछल-कूद। खेल-खेल में हो रहा काम। सब को सब का सहारा। एक काम। सब का काम।

बालकों की उछल-कूद। खेल-खेल में हो रहा काम। सब को सब का सहारा। एक काम। सब का काम।

कैसे जगा यह गांव। किसने जगाया इस गांव को? कैसे हुआ यह जागरण?

छोटी-सी बात। गांव के गोचर-चरनोट पर किसी ने नाजायज कब्जा कर डाला। सैकड़ों बीघा जमीन। गांव के लोग न देख सके यह गलत काम। सभा जुड़ी। ऐसा करने वाले आदमी से गांव के लोग मिले। समझाया-बुझाया। बात नहीं बनी। लोग एकजुट हुए। राज के बड़े हाकम के पास पहुंचे। हकीकत बयान की। गांव की कठिनाई सामने रखी।

हाकम ने हकीकत समझी। कब्जा हटा। गोचर-चरनोट फिर से खुला हुआ। पर बात यहीं तक नहीं रही।

नहीं चेते रहेंगे तो कब्जे होते ही रहेंगे। सबने मिलकर



सभी पेड़ों पर सूत का धागा बाँध रहे हैं।
पेड़ के साथ आदमी का नाता।

अपने गोचर, अपने चरनोट के विकास का फैसला किया।

सबने मिल कर एक वचन लिया। "पेड़ पिता है, हरियाली है धाय हमारी।"

यही घटना छोटे गांव की बड़ी बात बन गयी।

दूर-दूर से लोग आने लगे। हो रहे काम को देखने-समझने। देखते-देखते गोचर-चरनोट के चारों ओर हरे पेड़ों की दीवार बनाने, पौधे लगने शुरु हो गये।

गोचर में गांव का साझा कुआं बन गया। पानी भरपूर मिलने लगा। सूखी गोचर पर हरी घास उगने लगी।





कुलाचें खाते बछड़े बछड़ी।
गाँव जैसे गोकुल बन गया।

घास चरती गायें। गले में बंधी बजती घंटी। उछाले खाते बछड़े-बछड़ी। गांव जैसे गोकुल बन गया।

अपने काम से जाना जाने लगा गांव। गांव-जनों को मिलने लगी बधाइयां। गांव खड़ा हो गया।

कैसा उदाहरण कायम किया है गांव ने! न चलने वाले पेड़ों के लिए न बोलने वाले पशुधन के लिए जन जागरण।

फिर क्यों न कहलाए छोटे गांव की बड़ी बात।

जलसा खतम हो गया। हरखू और रमेश शहर की ओर चल पड़े।

हरखू को अब काम पर जाने की चिंता नहीं थी। चेहरे पर ओज भी झलक रहा था। लेकिन अनमनापन मिटा नहीं था। अभी भी वह बेचैन था।

रमेश भी खुश था। गांव के जागरण जलसे में अपने योगदान की खुशी। गांव के लोगों के मनों में अपनी जगह बना लेने की खुशी।

लग रहा था जैसे हर काम में रमेश की झलक हो। यही तो होता है एकमेक हो जाने से। रमेश का यह रूप पहली बार हरखू के सामने आया।

"गजब के आदमी हो रमेश।" हरखू बोला। "कभी नहीं बताई इस गांव की बात। बराबर जाते रहे हो वहां। कितना चाहते हैं लोग तुमको। कितने खुश थे तुम्हें देखकर।"

हरखू बोलता ही चला जाता यदि रमेश न टोकता।

रमेश बोला —

"अरे हरखू — तुम भी कैसे हो? निरे भावुक। ऐसी कोई बात नहीं भैया। गांव के लोग होते ही सीधे-सादे हैं। थोड़ा उनमें मिल-बैठ लो। सिर आंखों पर बिठा लेते हैं। देखो न तुम भी तो गांव के हो। कितना मानते हो मुझे।"

"बस-बस रहने दो रमेश। असल में तुमने ही दिखाई यह राह उस गांव को।" हरखू बोला।

"अरे नहीं भाई। मैं तो बहुत बाद में गया हूं। असली ताकत तो गांव की ही है। वे ही खड़े हुए पहले। बाहर का क्या खड़ा करेगा किसी को। खुद जागे सो ही सवेरा। समझे हरखू?"

"समझा रमेश। पर, तुमसे ताकत तो मिली है उनको। इतना बड़ा जलसा गांव के बूते का नहीं। कई बड़े-बड़े लोग थे उसमें।"

हरखू की बात काटते हुए रमेश बोला —

"गांव का बूता कम न समझो। उनकी ताकत तो जगनी चाहिए। एक बार जग जाय बस। फिर सब अपने आप होता जाता है। बड़े लोगों की बात छोड़ो। सब चले जाते हैं मौका आने पर। असली बात समझो। आवाज देने पर कौन खड़ा दिखता है, उससे मिलती है ताकत।"

"सो ही तो कह रहा हूं। तुम तो मानते नहीं। ठीक भी है। पर तेरी छाप वहां देख सकता है कोई भी। जो तुझे जानता है।" हरखू ने कहा।



रमेश बोला, "अरे हरखू, तुम भी कैसे हो? निरे भावुक!
कोई ऐसी बात नहीं। गाँव के लोग होते ही सीधे हैं।"

"चलो मान लेते हैं तेरी बात" — कहते हुए रमेश हंसा।

दोनों फिर चुप हो गये। थोड़ी देर में वे बस स्टैंड पहुंच गये। मोटर रुकी। दोनों उतरे।

रमेश ने हरखू की ओर देखा।

"चलो — तेरे कमरे पर चलूंगा।" हरखू बोला और दोनों आगे बढ़े।

"पर क्यों? काम पर नहीं जाना? कल तो कह रहे थे — परेशानी हो जायेगी।" — रमेश बोला।

"सो तो ठीक है। जो होगा देखा जायेगा। मुझे तुमसे कई बातें करनी हैं। मैं कुछ और ही करना चाहता हूँ।" हरखू बोला।

वे चलते रहे।

"कैसे आदमी हो, कुछ पता नहीं चलता तेरा हरखू। कल कुछ कह रहे थे। रास्ते में कुछ बोलते रहे। अब काम पर नहीं जा रहे। सोचो? क्या होगा — कैसे चलेगा?" रमेश ने कंधे पर हाथ धरते हुए कहा।

हरखू का मन अब काफी मजबूत हो गया था। वह रुका नहीं। चलते रहे दोनों। रमेश की ओर देखा और बोला —

"यही सोच रहा हूं। यही बात करनी है। अब कैसे चलाना है? कैसे चलना है हमें? मुझे? मैंने तो सोच लिया है।

बस तुम अपनी राय दे दो। इतनी ही बात करनी है।''

भीड़ भरी सड़क पर अलग ही दीख रहे थे वे दोनों। कंधे पर थैला लटकाए। मोटे से कपड़े का चोला-पाजामा। पांवों में देसी पगरखी। चाल में एक भरोसा। एक पक्का इरादा।

बस स्टैंड से रमेश का कमरा दो किलोमीटर। आधा घंटे में दोनों कमरे पर पहुंच गये।

हरखू खाट पर अधलेटा हो गया। रमेश कुरसी पर बैठा। जूती खोली। कुरसी पर पांव ऊंचे किये। पल भर आंखें बंद कर लीं। दोनों थक गये थे।

कई मिनट गुजर गये। दोनों मौन।

हरखू अब ठीक से बैठ गया। बोला —

''रमेश! काफी थक गये।''

''ऐसा तो कुछ नहीं। मैंने देखा तुमको थकान हो रही है। तो मैं भी चुप कर रहा। बताओ अब क्या सोचा है? क्या बात करना चाहते हो?'' रमेश बोला।

''हां रमेश, मैं सोचता हूं नौकरी छोड़ दूं। और गांव चला जाऊं। वहीं रहूं। काम करूं। वही काम जो कल देख आया हूं। घर की जमीन है। मेहनत से क्या नहीं होता। मैं करूंगा। गांव में और लोग भी करेंगे। नौकरी से क्या होना है। नौकरी कौन-सी पक्की है।'' हरखू ने कहा

रमेश सोचने लगा — यह क्या कह रहा है हरखू।

एकदम से यह कैसे हुआ। क्या कहे वह। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था।

दोनों चुप। एक-दूसरे को देखते रहे।

''बोलो।'' हरखू ने कहा।

''बात तो ठीक है भाई। बहुत सही सोचा है तुमने। जो हालात है उनमें यह जरूरी है। पर हरखू, तुम्हारी हालत तो तुम जानते हो। काका के अकेले सहारा हो। किस कठिनाई में काका ने बी.ए. कराया है ?उनकी आशा की तरफ सोचो।'' रमेश ने हिदायत की भाषा में कहा।

हरखू बोला — ''हां बी.ए. तो हूं। पर हूं तो मजूर। वह भी कच्चा। देर-सवेर काका भी जानेंगे ही यह। अभी भी मां जिद करने लगी शादी की। बोली — ''बूढ़ी हो गई हूं बेटा। सहारा चाहिए। बहू को शहर ले जाओगे तो तुमको रोटी का सहारा मिलेगा।''

हरखू ने सारी बात साफ कर दी। उसने तय ही कर लिया है। गांव ही जायगा। वहीं रहेगा। रमेश मन ही मन खुश हो रहा था।

रमेश बोला — ''तो तुमने ठान ली गांव जाने की। और भी सोच लो। मैं तो राजी हूं। तुमने ठीक ही सोचा है।''

''और अब क्या सोचना है — रमेश! तुम्हारी ही राय जाननी थी। बताओ तुम आते रहोगे न गांव?'' हरखू ने कहा।

''लो। यह भी ठीक कही तुमने हरखू। अरे मैं आता

ही नहीं रहूंगा — मिलकर काम करेंगे। एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा — बस इसी तरह बढ़ते जायेंगे। छुट्टियों में या जब तुम चाहोगे — मैं आता रहूंगा।'' रमेश बोलते-बोलते एक पल रुका।

वह फिर बोलने लगा —

''आज यही चाहिए — हरखू। हमारी जरूरत है गांवों को। हम जायेंगे तो उनकी हिम्मत बढ़ेगी। काम के नये-नये तरीके पता चलेंगे। वे तरीके जो गांव को टिकाये रख सकें। गांव को बचाये रख सकें।

रमेश अब बोले जा रहा था। हरखू ने ऐसी ताकत दे दी उसे। गांव जाने का फैसला सुनकर।

रमेश फिर बोलने लगा —

''अब देखो हरखू। गांव-गांव में रोशनी होना कठिन बात नहीं। हर गांव में पशुधन है। गौधन है। हर गांव में गोचर है। चरनोट है। गोबर गैस से रोशनी हो सकती है। कुआं हो गांव में तो मोटर से चल सकता है। और गोबर तो गाय से मिल ही जाता है। अकाल भी भगाया जा सकता है। गांव की गोचर-चरनोट पर घास लगा कर सूखी धरती को हरियाली में बदल सकते हैं।

हरखू हर बात को धीरज से सुनता रहा। रमेश चुप हुआ तो बोला —

''ठीक कहते हो रमेश। हर गांव में गोचर-चरनोट होते हैं। नहीं हो कहीं तो पंचायत से रखाये जा सकते हैं। हमारे गांव



हर गाँव में गोचर है। चरनोट है।
गोबर गैस से रोशनी हो सकती है।

में तो है गोचर। उस पर भी काम कर सकते हैं। काका, रामू दादा, गंगू मामा बूढ़े हो गये तो क्या हुआ। उनको गोचर पर ले जा सकते हैं। कुछ काम होने लगे तो कहें कि ये सब थोड़ा समय यहीं गुजारें।

हरखू थोड़ा चुप रहा। वह फिर कहने लगा —

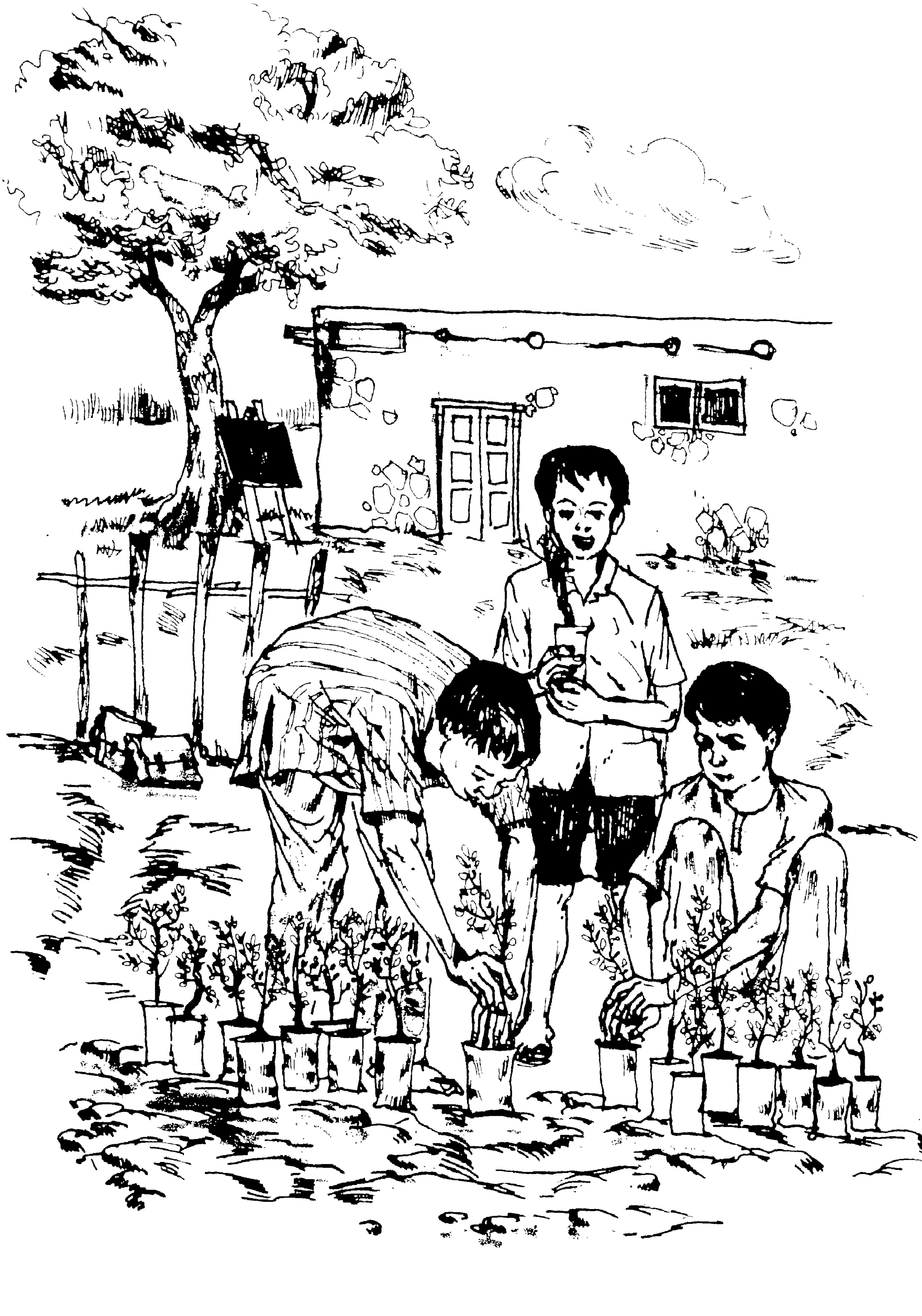
"एक ओर भी बात हो सकती है। गांव में स्कूल है। आठवीं तक। स्कूल में पढ़ने वाले बालक गांव ही के तो हैं। उनको खाली समय में वहां ले जा सकते हैं। हम भी एक पौधशाला बना सकते हैं। जन पौधशाला, जहां ऐसे पौधे ही तैयार किये जायें जो गांव के लिए ठीक हों। पशुधन होता है गांव में। तो पेड़ भी ऐसे हों कि जिनसे चारा मिले पशुओं को। कितने ही ऐसे पेड़ है इस धरती पर।"

हरखू अब पूरे जोश में था। गांव जाने की उतावली होने लगी।

रमेश फिर सोचने लगा। उसे लगा हरखू भावना में बहने लगा है। उसे काबू करना चाहिए। ऐसा होना तो ठीक नहीं। हवाई किले बनाना अच्छा नहीं।

"हां — हां —— सब हो सकता है। पर एक साथ नहीं। एक-एक करके। तुम नौकरी छोड़ कर जाओगे? जाते ही गांव में काम शुरु करना होगा। ऐसा नहीं किया तो काका पर क्या गुजरेगी? घर का गुजारा भी कैसे चलेगा?"

रमेश ने सचेत करते हुए कहा।



स्कूल में पढ़ने वाले बालक गाँव ही के तो हैं।
उनके खाली समय में वहाँ ले जा सकते हैं।

हरखू थोड़ा सहम गया। बोला —

''अरे हां। यह तो तुमने ठीक कहा। यह तो जरूरी है। नहीं तो मेरी ही हंसी होगी। रामू दादा ने कालू के लिए कहा था। यहां साथ नहीं लाया। मुझे गांव में देख यही तो कहेंगे — खुद ही के लिए ठौर नहीं तो कालू को क्या ले जाता। तुम ठीक कहते हो रमेश। तुम बताओ। क्या करूँ वहाँ जाते ही?''

हरखू चुप हो गया।

दोनों के बीच फिर मौन। हरखू देखने लगा रमेश की ओर। क्या कहता है वह। हरखू को जैसे जानने की उतावली हो रही थी।

रमेश सोचता रहा। उसने आंखें बंद कर लीं।

हरखू बराबर उसे ताक रहा था।

रमेश अब कुरसी पर ठीक से बैठ गया। आंखे खोली। बोला — ''एक बात बताओ। गांव में खेत है अपना। खातेदारी का खेत है न।''

''हां — रमेश। काका के नाम चढ़ा था। पिछले वर्ष मेरा नाम भी चढ़ा दिया। जमीन भी ठीक है। बारिश हो तो अच्छी फसल हो। बताओ तुम क्या करना चाहते हो।'' हरखू ने पूछा।

रमेश बोला — ''मैं तो सोचता हूं खेत में कुआँ बना लें। मोटर पम्प लगा लें। मोटर पंप लगाने के लिए गोबर गैस से बिजली पैदा कर लें।



मैं तो सोचता हूँ खेत में कुआँ बना लें। मोटर पम्प लगा लें।
मोटर पम्प लगाने के लिए गोबर गैस से बिजली पैदा कर लें।



"यह तो ठीक बताया तुमने रमेश। पर, यह होगा कैसे? पैसा कहां से आयेगा? कैसे बनेगा कुआँ? ग्ोबर गैस का भी कुआँ ही बनता है?" हरखू ने शंका जाहिर की।"

"तुम खेत के कागज मंगा लो हरखू। यहां मैं देखता हूं मदद के लिए। इन कामों के लिए तो पैसा मिल सकता है। बैंक से भी पैसा ले सकते हैं। एक पूरी योजना बना कर दे सकते हैं। इस सूखी धरती पर हरियाली के लिए कई जगहों से मदद मिल सकती है। फिर हमारी योजना तो पूरे गांव के लिए होगी।"

रमेश की बात हरखू के गले उतर रही थी। उसे लगने लगा काम बन सकता है।

देख भी तो चुके हैं उस गांव में यही सब होते।

हरखू ने कहा — "ठीक है रमेश। मैं कल नौकरी छोड़ता हूं। हमें यही करना है।"

"सबको जगाना है तो पहले खुद ही को जगना होगा।"

शगुन ऑफसेट द्वारा मुद्रित